

## जातिपांति - मंदिर प्रवेश

❖ आचार्य विद्या प्रसाद मिश्र

सहायक प्रोफेसर  
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र,  
(संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार)  
नई दिल्ली-110001

दलितों और सवर्णों का परस्पर विवाद अवैदिक, असंगत तथा विवेक विरुद्ध है। देश और समाज की दुर्दशा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है - जन्ममूलक वर्ण व्यवस्था। आज की प्रचलित वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्था और अराजकता की जननी है। सतयुग से लेकर महाभारत काल तक वैदिक मर्यादाओं का पालन होने के कारण भेद-भाव व छूत-छात की विषैली बेल इस आर्यावर्त के उद्यान में पैदा ही नहीं हुई थी। समाज में प्रीति, स्नेह और समानतापूर्ण वातावरण का कारण था - गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार वर्ण व्यवस्था का पालन। इस बात की पुष्टि के लिए इतना ही तर्क पर्याप्त है कि सृष्टि उत्पत्तिकाल से लेकर महाभारत के भी कुछ सौ वर्ष बाद तक भारत के किसी भी समाज में, किसी भी विरादरी या कुटुम्ब में किसी भी व्यक्ति के नाम के साथ कोई उपनाम नहीं था। अतीत का एक भी ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन है जब किसी व्यक्ति के नाम के साथ मिश्र, तिवारी, पाण्डेय, द्विवेदी, पाहूजा, अरोड़ा, ग्रोवर, भल्ला, चटर्जी, मुखर्जी आदि कोई भी जातिसूचक शब्द लगा हो।

प्रश्न यह उठता है कि किस मान्यता के आधार पर किस धर्मग्रन्थ की प्रेरणा पर यह वर्ण की व्यवस्था होनी चाहिए ? आर्यों (हिन्दुओं) का धर्मग्रन्थ निर्विवाद रूप से वेद ही है। दुराग्रह व अज्ञानतावश यदि कोई किसी भी अन्य ग्रन्थ को धर्मग्रन्थ के रूप में मानते और प्रतिष्ठित करते हैं तो उन सभी सज्जनों को अपनी मान्यता में सुधार करना अनिवार्य है, अन्यथा हर दृष्टि से पूरी मानवता की हानि होगी। इस जन्म पर आधारित जाति-पांति के कारण हमारा, हमारे देश का पतन हो रहा है। निष्क्रियता, जड़ता, भाग्यवादिता, अनैक्य, अलगाव एवं संकीर्णता का प्राबल्य - इसी कुव्यवस्था की

देन है। इस हास व पतन के कारण समाज को अराजकता, अस्थिरता व असुरक्षा के दौर से गुजरना पड़ा रहा है। दमन एवं शोषण का कुत्सित चक्र गतिमान है। गली-सड़ी परम्पराएं, व्यवस्थाएं, प्रथाएं, रूढ़ एवं कट्टर रूप धारण कर चुकी हैं। स्पष्टतः समाज विघटन के कगार पर है। कट्टरता, धर्मान्धता, असहिष्णुता, व्यापक अज्ञान, अन्धविश्वास एवं साम्प्रदायिक विद्वेष जड़ें जमा चुकी हैं। मानवीय मूल्य निष्प्रभावी हो चले हैं। समानता, एकता, बन्धुत्व आदि के लोप हो जाने पर अब हमें वेद के आधार पर सत्य की कसौटी पर हर तथ्य का विश्लेषण करना होगा। कसौटी पर जो तथ्य खरा उतरे, उसे ही मानने से परिवार, समाज व देश का भला होगा।

वस्तुतः आज संसार एक भारी उलझन में पड़ा हुआ है। सबसे बड़ी उलझन जो आज संसार के सामने है, वह है धर्म, धर्मग्रन्थ और ईश्वर की। धर्मग्रन्थ, धर्म और ईश्वर के आधुनिक विकृत रूप को देखकर एक सच्चा जिज्ञासु भ्रम में पड़ जाता है। जब हम संसार के अनगिनत मत-मतान्तरों को अपने अपने धर्मग्रन्थों, मतों और सम्प्रदायों को अपनी ही प्रशंसा करते हुए सुनते व पढ़ते हैं तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता, कोई डगर दिखाई नहीं पड़ती। वास्तव में कौन सा ग्रन्थ है, जिसे 'धर्मग्रन्थ' कहा और माना जा सके ? निष्पक्षरूप से शोध और विचार करने पर यह निचोड़ निकलता है कि जो मौलिक तथ्यों पर खरा उतरे - वही और केवल वही धर्मग्रन्थ हो सकता है, यथा उसी ग्रन्थ को धर्मग्रन्थ के आसन पर प्रतिष्ठित किया जाना तर्कसंगत और लाभप्रद होगा जिसमें अनावश्यक विज्ञान विरुद्ध रूढ़ियों तथा किसी विशेष वर्ग व समुदाय का महिमामण्डन न हो और निश्चय ही वह ग्रन्थ ईश्वर की ओर से हो, किसी मनुष्य की ओर से नहीं। वेद के अतिरिक्त सभी तथाकथित धर्मग्रन्थ मानवनिर्मित हैं। कोई भी मनुष्य सर्वथा एकदम निर्दोष नहीं हो सकता। अल्पज्ञ मानव की रचना में भी कुछ न कुछ न्यूनता, कहीं न कहीं पक्षपात दिखाई देगा। केवल वेद ही हैं, जिसमें किसी व्यक्ति विशेष की प्रशंसा या इतिहास नहीं है। वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हो सकता है क्योंकि इसमें ही मनुष्य की उन्नति के सभी साधन, इस लोक में अभ्युदय तथा सुख एवं परलोक में मुक्ति के सभी साधन विद्यमान हैं। यदि विज्ञान की कसौटी पर किसी भी ग्रन्थ की परख की जाय तो वेद के अतिरिक्त अन्य कोई ग्रन्थ टिक नहीं सकता। मिथ्याधारणा के वशीभूत होकर कुछ सौ या कुछ हजार वर्ष पूर्व रचे गए साहित्य को, ग्रन्थों को परमात्मा की वाणी कहा जाता है। यहाँ विचारणीय बात यह है कि ईश्वरीय

ज्ञान तो वही हो सकता है जो सृष्टि के प्रारम्भ से हो। वेद ही ऐसे हैं जो कि सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा द्वारा संसार को सभी के कल्याण हेतु मिला। गुरु-शिष्य परम्परा (oral tradition) में हम तक पहुँचा - यही कारण था इनमें मिलावट नहीं हो सकी और इसीलिए इसे 'श्रुति' कहा जाता है। जब कोई दुकानदार किसी ग्राहक को मोबाइल फोन बेंचता है तो ऐसा कभी नहीं हो सकता कि दुकानदार फोन का सेट आज बेंचे और उसके खोलने, बन्द करने, प्रयोग करने के तरीके दो वर्ष बाद बताए। इसी प्रकार विधाता ने सृष्टि का निर्माण करके जब जीवों के कल्याण हेतु दिया तब यह आवश्यक है कि सृष्टि के उचित व ठीक उपयोग व प्रयोग करने का ज्ञान भी उसी समय, एक ही साथ दे। अतएव वह ज्ञान, वह विद्या जो परमात्मा ने संसार की रचना के आरम्भ में दिया वही वेद है। यह तो संसार के सभी बुद्धिजीवी एक स्वर से स्वीकार करते ही हैं कि विश्व के पुस्तकालय में सबसे पुरानी पुस्तक वेद ही है। परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप भी केवल वेद से ही अवगत होता है। तो यह सिद्ध हुआ कि केवल वेद ही धर्मग्रन्थ हैं, यही सनातन अकाट्य मान्यता है। हमें कदाचार और कुत्सित संस्कारों से हटकर अपनी अधमावस्था को दूर करने के लिए वेद को ही (सर्वमान्य धर्मग्रन्थ) प्रमाण मानकर तदनुकूल व्यवहार व आचरण करके अपना और सबका कल्याण करना चाहिए। जन्म के आधार पर जाति-पाँति का, ऊँच-नीच का, दलित और सवर्ण का जो कुत्सित रूप आज दिखाई देता है - इस सम्बन्ध में वेद का क्या आदेश है ?

**अन्येष्ठासो अकनिष्ठासएते सं भ्रातरो।**

**वावृधुः सौभगाय। ऋ० 5/60/5**

संसार भर के मनुष्यों में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है। सभी मनुष्य एक जैसे एकदम बराबर के भाई हैं। सभी को मिलकर वैभव, शान्ति व उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

जब तक वेद के इस आदेश का पालन नहीं होगा तब तक मानव समाज से जन्मसिद्ध ऊँच-नीच का भ्रमित व्यवहार दूर नहीं होगा। दुर्भाग्य से आज देश में 'वर्ण' और 'जाति' शब्दों को पर्यायवाची समझ लिया गया है। बीमारी का वास्तविक कारण यही है। जबकि "वर्णो वृणुते" अर्थात् वर्ण का वरण किया जाता है, इसे स्वयं चुना

जाता है। शिक्षा के बाद अपनी आजीविका के लिए लोक में अपने गुण, अपनी योग्यता और अपने स्वभाव के अनुसार जिस व्यवसाय / कार्य को चुना जाता है, उसी के अनुसार वर्ण बनता है। वर्ण का अर्थ जाति हो ही नहीं सकता। जाति का अर्थ तो जन्म होता है। जाति का लक्षण न्यायशास्त्र के अनुसार - 'आकृतिजातिलिंगाख्या' है। अर्थात् जिन लोगों की आकृति, शकल-सूरत एक जैसी, एक समान है, उन सबकी एक जाति है। जैसे संसार के सभी मनुष्यों की एक जाति, सभी घोड़ों की एक जाति, सभी हाथियों की एक जाति ही है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि वर्ण हैं जाति नहीं। समाज में भेद-भाव या छूत-छात के स्थान पर सामंजस्य व प्रेम कैसा, किस प्रकार का हो ? वेद में अत्यन्त अलंकारिक ढंग से शिक्षा दी गई कि

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।  
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।**

-ऋ० 10/90/12

संसार के सभी मनुष्यों को परमात्मा की वाणी वेद की यह सीख है कि जिस प्रकार मनुष्य के शरीर में सभी कार्यों के सम्पादन हेतु मुँह, हाथ, पेट और पैर प्रभु ने बनाए हैं उसी प्रकार मानव को भी चाहिए कि व्यक्तिगत व सामाजिक कार्यों की सिद्धि व सफलता के लिए चार प्रकार के व्यवसायी कार्यकर्ता (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) बनाया जावे। जिस प्रकार पैर शरीर का अंग है और उसे शरीर से काटकर अलग नहीं किया जा सकता, अगर अलग करेंगे तो ध्यान रहे कि शरीर के दूसरे अंग मुँह, हाथ आदि बेकार हो जाएंगे, पूरा शरीर अपंग हो जाएगा। यह भी हो सकता है कि पैरों को अलग करते समय, काटते समय शरीर का ही अन्त हो जावे - इसी प्रकार दलित व शूद्र को भी अलग नहीं किया जा सकता। जैसा सम्बन्ध शरीर के अंगों का परस्पर है वैसा ही प्रेम भरा व्यवहार समाज में सभी का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का आपस में होना चाहिए। पैर में अगर काँटा चुभ जावे तो सारा शरीर दुःखी हो जाता है मुँह से निकलती है कराह, मस्तिष्क सोचने को मजबूर हो जाता है। हाथ दौड़ते हैं पैर में चुभे हुए काँटे को निकालने के लिए। जब तक काँटा निकल नहीं जाता तब तक दूसरे अंग भी शरीर के चैन नहीं लेते। ठीक इसी प्रकार चारों ही वर्णों का एक-दूसरे

के साथ सहयोग, स्नेह और प्यार रहे तभी समाज में समानता, सुख और शान्ति की स्थिरता रह पाएगी। तभी वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य भी पूरा होगा। हमारे पूर्वजों ने सेवा के काम को कभी नीच नहीं माना। वर्ण व्यवस्था की परम्परा का आरम्भ देश सेवा के पवित्र उद्देश्य से आरम्भ हुई थी अर्थात् चारों ही वर्णों के लोग अपने-अपने व्यवसाय व कार्य से राष्ट्र की सेवा करते हैं। सामाजिक के अतिरिक्त व्यक्तिगत सेवा को भी कभी निकृष्ट या अधम कार्य नहीं अपितु अति उत्तम कार्य समझा जाता था। इस तथ्य की पुष्टि में अकाट्य प्रमाण पाण्डवों का राजसूय यज्ञ है। राजसूय यज्ञ में अतिथियों के पैर धोने का कार्य किसने किया ? अर्जुन का रथवान कौन बना ? वह कोई दलित या शूद्र नहीं बल्कि परमपूज्य योगेश्वर श्रीकृष्ण थे। इस यज्ञ के आरम्भ में जिसकी पूजा हुई वह भी श्रीकृष्ण ही थे। पुनः समाज में सेवा के महत्त्व को अंकित करना ही होगा। स्वयं मनु भी सिद्धान्त रूप से वर्णों को जन्मपरक नहीं मानते -

**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।  
क्षत्रियाजातमेवंतु विद्याद्वैश्यात्तथैव च।**

मनु० 10/65

अभिप्राय यह है कि शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य के वर्ण भी बदल जाते हैं। चारों ही वर्णों के व्यक्ति अपने-अपने कार्यों को बदलकर अपने वर्णों को भी बदल सकते हैं। वेदानुकूल इस सार्वभौमिक सत्य का प्रतिपादन पुराण और दूसरे ग्रन्थ भी करते हैं। यदि वर्णव्यवस्था जन्म के अनुसार होती तो भविष्य पुराण (अध्याय 40 श्लोक 26) में चारों वर्णों का परिवर्तन जीविका के साधन परिवर्तन से होना न लिखा होता। यदि अतीत में आज की तरह वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर होती तो कश्यप, व्यास, वसिष्ठ, मतंग आदि (महाभारत शान्तिपर्व अध्याय 296, श्लोक 11 से 17) ऋषि मुनि दासीपुत्र होने के बावजूद भी ब्राह्मणत्व को न प्राप्त होते। कोई भी मनुष्य कुल, वंश व गोत्र के कारण ब्राह्मण नहीं हो सकता। यदि चाण्डाल भी सदाचारी है तो वह ब्राह्मण होता है।

भविष्य पुराण (44/33) में स्पष्ट लिखा है कि -

**शूद्रोऽपि ज्ञानसम्पन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत्।  
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्रात्प्रत्यिवरो भवेत्॥**

अर्थात् कोई शूद्र यदि ज्ञान से सम्पन्न हो तो वह ब्राह्मण से भी अधिक श्रेष्ठ है और आचार से भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक नीच है। वर्णव्यवस्था की वर्तमान भ्रान्त धारणा से सारा हिन्दू समाज विघटित हो गया है। परस्पर घृणा पैदा हो गयी है।

प्राणिमात्र के प्रति सद्भाव, उनके विकास तथा विवेकपूर्ण आचरण को जितना महत्त्व भारतीय संस्कृति ने प्रदान किया है, वैसा विश्व की किसी भी संस्कृति में खोजने पर भी न मिलेगा। यही वह संस्कृति है जिसने पूरे विश्व को अपना परिवार माना है और मानव-मानव के बीच समानता के अधिकार को सर्वोच्च मान्यता प्रदान की है। भारत और उसकी प्राचीनतम परम्परा दोनों में अटूट सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को तोड़कर न राष्ट्र का हित होगा, न समाज का। वर्णव्यवस्था को भी प्राचीन रूप देकर जन्ममूलक के स्थान पर इस व्यवस्था को पुराने भारत की भाँति कर्म व व्यवसायमूलक बनाकर अपने आदर्शों को पुनः अपनाया होगा अन्यथा हमारी एकता और तत्सम्बन्धी उदात्त-उन्नत मान्यताएं और अधिक खण्डित हो जाएंगी।

आज समाज में प्रचलित कुत्सित वेद विरुद्ध वर्ण-अव्यवस्था के कारण देश की दुर्दशा है। यह पतन की पराकाष्ठा है। हिन्दू समाज के देवालयों में तथाकथित दलितों व शूद्रों का प्रवेश तक वर्जित है। परमात्मा तो विश्वनाथ, जगन्नाथ अर्थात् संसार का स्वामी है फिर भी हरेक दर्शनाभिलाषी मन्दिर में प्रवेश नहीं कर सकता। जबकि यह वह देश है जहाँ के वेद और शास्त्र **समानो मंत्रः समितिः समानी** का पाठ पढ़ाते हैं। महाभारत काल तक तो हमारे समाज में अपने कर्म और व्यवसाय के आधार पर ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण बन जाते थे। इतना ही नहीं, हमारे समाज में एक वर्ण का दूसरे वर्ण में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित किए जाते थे। अनगिनत ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध हैं किन्तु प्रमाण के तौर पर केवल भविष्य पुराण के व्रत्य पर्व को ही देखें, जिसके श्लोक संख्या 22, 23 व 24 बताते हैं कि कैवर्त स्त्री से व्यास जी का, एक चाण्डाली से पाराशर मुनि का, उलूकी से कणाद मुनि का जन्म हुआ और वे अपने ज्ञान व व्यवहार से पूज्य ब्राह्मण बन गये। इसी प्रकार बहुत से ऋषि नीच कुल में उत्पन्न हुए किन्तु कालान्तर में अपने तप और विद्या से श्रेष्ठता को प्राप्त हुए। समानता

की सीख संसार को देने वाले देश में ऊँच-नीच का भेदभाव अक्षम्य अपराध है। अस्पताल वही श्रेष्ठ है जहाँ हर रोगी का उपचार हो सके - चाहे वह किसी भी वर्ण व प्रान्त का हो। ऐसे ही देवालय व मन्दिर में सभी श्रद्धालुओं को प्रवेश और पूजा की अनुमति होनी चाहिए, चाहे वह भक्त किसी भी प्रान्त, विरादरी या वर्ण का हो। उत्तराखण्ड के सिलगूर स्थित एक मन्दिर में 20.5.2016 को श्रद्धालु भक्तों के प्रवेश का प्रबल विरोध एकदम शास्त्र विरुद्ध अमानवीय दुर्घटना थी। मन्दिर हिन्दुओं का है। हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ वेद है। वेद के अनुसार आचरण में ही भलाई निहित है। भारतीय संसद के विद्वान् सदस्य (राज्य सभा) श्री तरुण विजय भारतीय संस्कृति के प्रबुद्ध प्रहरी हैं। वे तथाकथित दलित बन्धुओं को मन्दिर में प्रवेश और पूजा का आग्रह कर रहे थे। इस नेक और महान् कार्य में दुर्भाग्य से वे घायल हुए। यह घटना भारतीय संस्कृति के मस्तक पर कलंक है। जब स्मृतिकार कहते हैं कि वेद न जानने वाला शूद्र है। तब दलित, पतित और शूद्र वे नहीं है जो श्रद्धा से मन्दिर में प्रवेश चाहते थे, बल्कि शूद्र ही नहीं पापी भी वे ब्राह्मणबन्धु हैं जो जन्ममूलक अपने वर्ण पर मिथ्याभिमान करते हुए मानवतावाद के विरुद्ध, वेद के विरुद्ध व्यवहार करके मन्दिर प्रवेश में दलितों के लिए मनाही करते हैं।